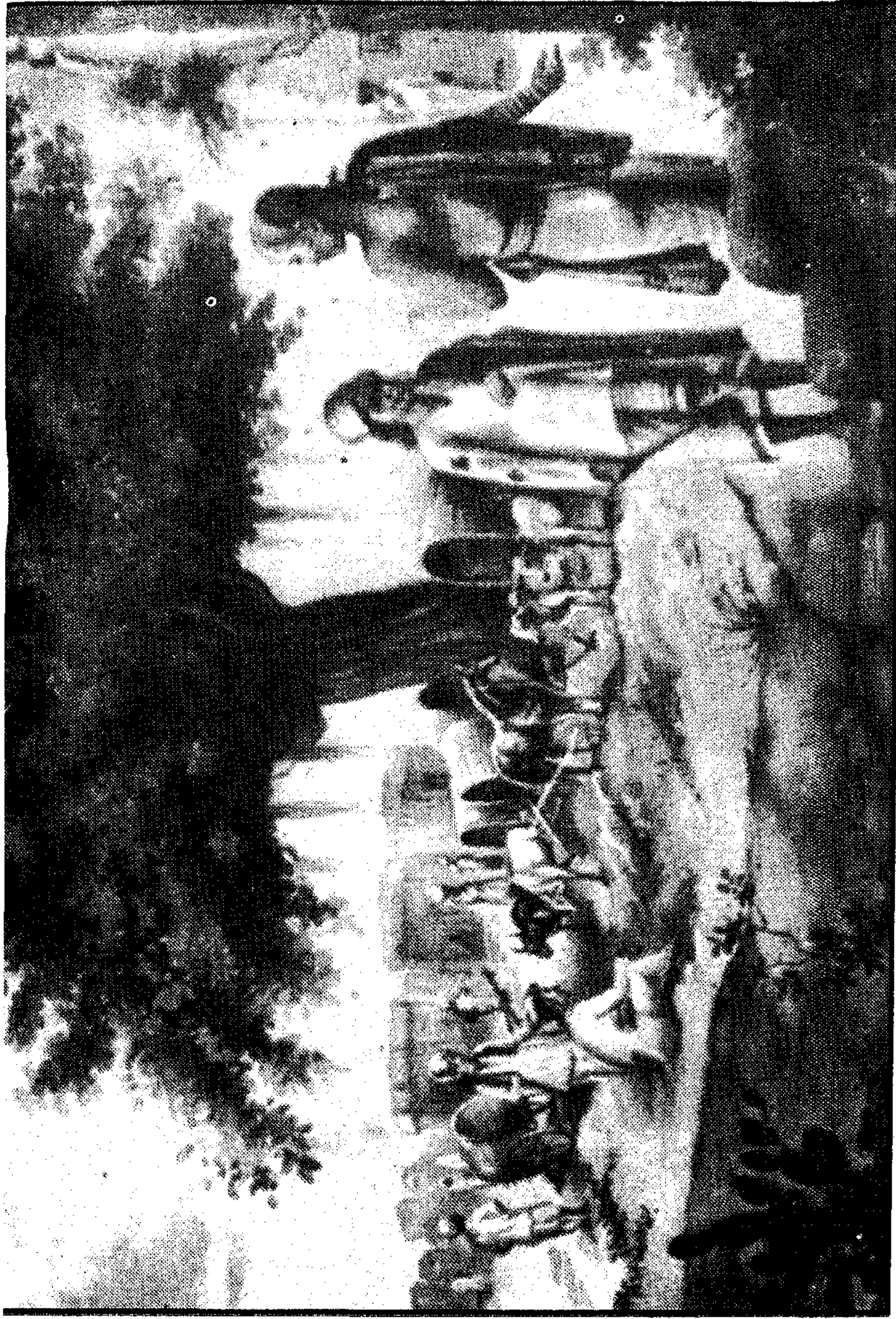


दूसरा अध्याय सूत्रधार गुरु

सन् १९१० के लगभग एक चमत्कारपूर्ण घटना हुई । एक दिन प्रातःकाल सो कर उठते ही श्री साई बाबा द्वारकामाई में आकर एक गेहूँ की बोरी के पास गए और बहुत से गेहूँ निकाल कर स्वयं चक्की लेकर पीसने बैठ गये । अपनी कफनी की आस्तीन ऊपर उठा कर श्री साई महाराज शक्ति लगाकर बराबर गेहूँ पीसते रही । उनका यह विलक्षण आचरण देखकर लोग आश्चर्य में डूब गये । पर किसी का यह पूछने का साहस नहीं हो रहा था कि "बाबा, आप क्यों कष्ट कर रहे हैं ? आज गेहूँ पीसने का क्या प्रयोजन है ?" श्री बाबा चुपचाप गेहूँ पीसते रहे । शीघ्र ही यह समाचार शिरडी गाँव में फैल गया और चार सुहागिन स्त्रियाँ दौडती हुई द्वारकामाई में आ पहुँची । उन्होंने अत्यंत ढिठाई से तमाशा देखने वाले लोगों को दूर हटा दिया और तत्काल भीतर जाकर श्री बाबा को भी चक्की पर से हटा कर वे चारों स्त्रियाँ लोक-गीत गाती हुई स्वयं गेहूँ पीसने लगी । पहले तो श्री बाबा जरा अप्रसन्न से दिखाई दिये, किन्तु उन स्त्रियों की भक्ति तथा प्रेम को देखकर वे एक और हट कर चुपचाप बैठ गये । पर्याप्त मात्रा में आटा पीसने के उपरान्त उन स्त्रियों की कुछ थकान अनुभव हुई । उन्होंने सोचा अपनी नित्य पद्धति के अनुसार श्री साई बाबा तो यह आटा भी सब लोगों में बाँट ही देंगे, इसलिये क्यों न स्वयं ही आटे का बाँटवारा कर लिया जाय । बस, उन्होंने आटे के चार बराबर हिस्से किये और प्रत्येक स्त्री अपना अपना हिस्सा इकट्ठा करने लगी । तभी इतनी देर से शांत बैठे हुए श्री बाबा एकाएक क्रोधित हो उठे । उन स्त्रियों को अपशब्द कह कर इकट्ठा लोगोंके बीच उन्हें पर्याप्त लज्जित किया और वह सारा गेहूँ का आटा गाँव की सीमा के बाहर फेंक आने का आदेश दे दिया ।



“वह बाल फकीर गाडीसे उतरा । पहले भक्त की दृष्टि जैसे ही उस पर पड़ी उसने कहा-
“आओ साई मेरे पास आओ” नाम पड़े वही “साई”

लज्जा से गडी हुई वे स्त्रियाँ श्री बाबा की आज्ञानुसार सारा आटा गाँव के बाहर फेंक आयी ।

गाँव की सुध-बुध रखने वाले कुछ मुखिया लोगों ने तत्काल ही श्री साई महाराज के इस रहस्यमय आचरण का अर्थ लगाने की चेष्टा की । उस समय शिरडी गाँव के आस-पास हैजे का भयानक रोग विक्राल रूप में फैल रहा था । अपने गाँव में इस रोग का प्रकोप न हो, इसलिए श्री बाबा ने यह आटे की योजना की थी । गाँव के बाहर आटा फेंक कर उन्होंने विलक्षण ढंग से “दिशा-बन्धन” किया था और आश्चर्य की बात तो यह हुई कि शिरडी गाँव में रोग का प्रवेश ही नहीं हुआ । श्री साई की इस गेहूँ पीसने की क्रिया में भी कितना महान् तत्त्व भरा हुआ था । श्री सद्गुरु साई केवल आटा ही नहीं पीसने थे, प्रत्युत अपने सब भक्तों के पाप, उनकी सारी मानसिक तथा शारीरिक व्यथाएँ भी अपने हाथों से पीस डालते थे । भक्तों की चक्की के कर्म और भक्ति के दो पाटों के घर्षण को श्री बाबा ने अपने हाथ में पकड़ते हुए ज्ञानरूपी डंडेसे गति दी । श्री साई महाराज का दृढ विश्वास था कि इसके परिणाम-स्वरूप भक्तों के हृदयों में बसा अहंकार नष्ट होगा तथा सत्त्व, रज, तम, इत्यादि गुणों पर समुचित नियंत्रण होकर संसार के जाल में फँसे हुए मानवों को परमात्मा के विश्वरूप का दर्शन एवं ब्रम्हानंद का अनुभव प्राप्त होगा ।

श्री साई बाबा के शिरडी में आगमन से पूर्व ही वहाँ देवीदास नाम के साधु रहते थे । उनकी गणना भी अधिकारी व्यक्तियों में होती थी । उनकी योग्यता की धाक ऐसी बैठी हुई थी की रामेश्वरम् पंढरपूर आदि पवित्र तीर्थस्थानों में जानेवाले साधु-संत भी उनसे मिलने के लिये आते थे । श्री साई बाबा भी प्रारम्भ में उनसे बार-बार भेट किया करते थे । बहुत देर तक उन दोनों की एकान्त में गुढ़ विषयों पर चर्चा भी होती थी । पर चर्चा भी होती थी । फिर कुछ दिनों के उपरान्त जानकीदास नाम के एक अन्य सत्पुरुष शिरडी गाँव में

आये। वह भी एक अधिकारी व्यक्ति ही थे, क्योंकि, श्री साई महाराज स्वयं ही उनसे मिलने के लिए गये और उन्हें अपने निवास स्थान पर ले आये। बहुत दिनों तक जानकीदास जी और श्री बाबा के मध्य गूढ़ ज्ञान के विषय पर वार्ता होती रही।

एक बार कोपरगाँव के निकट पुणतांबे गाँव के सन्त गंगागीर महाराज शिरडी पधारे। नित्य नियमानुसार श्री साई बाबा नीमवृक्ष के निकट ही अपने बाग में दोनों ही हाथों में पानी से भरी हुई गगरी लिए हुए पौधों में पानी दे रहे थे। यह दृश्य देख कर गंगागीर महाराज ने आश्चर्य प्रकट किया और उपस्थित गाँव वालों से कहा “अरे, यह मूर्ति यहाँ कब आई? यह तो एक अत्यन्त मौल्यवान रत्न है। इनकी योग्यता असाधारण है। धन्य भाग्य है शिरडी का। आज यह मनुष्य पानी भर रहा है, किन्तु यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है। आप लोग सचमुच ही बड़े भाग्यवान् हैं। आपके पूर्व जन्म के पुण्य-संचय के कारण ही यह रत्न यहाँ आया है।” गंगागीर महाराज के मुख से अकस्मात् निकले इन उद्गारों से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है और वह यह कि उन्होंने श्री साई महाराज को पहचान लिया। श्री बाबा की योग्यता कितनी बड़ी है, इसका उनको पूर्ण ज्ञान हो चुका था। इसी कारण उन्होंने श्री साई महाराज को रत्न की उपमा दी। उस समय तक शिरडी के लोगों में भी श्री साई महाराज के प्रति प्रेम और आदर का भाव संचरित हो गया था। चन्दन की सुगंध जैसे चारों ही दिशाओं में फैल जाती है, वैसे ही श्री साई बाबा का कीर्ति-परिमल शिरडी गाँव के बाहर भी फैलने लगा। दूर-दूर से भक्त लोग सहज प्रेरणावश श्री बाबा के दर्शनो के लिये शिरडी आने लगे।

श्री गंगागीर महाराज के कथन की पुष्टि के लिये मानो कुछ दिनों बाद ही अक्कलकोट महाराज के शिष्य महन्त आनन्दनाथ श्री साई बाबा के दर्शनों के उद्देश्य से ही शिरडी आये।

एक बार माधवराव देशपांडे, दगडू गायके, नन्दराम मारवाडी तथा भागचन्द मारवाडी आदि श्री बाबा के भक्त येवला के निकटस्थ सावगाँव से शिरडी की ओर आ रहे थे। उनकी बैलगाड़ी चलने ही वाली थी कि महन्त आनन्दनाथ एकाएक दौड़ते हुए वहाँ आये और बलपूर्वक गाड़ी में बैठकर बोले “मैं भी शिरडी चलूँगा।” लोगों ने उन्हें रोकने का भरसक प्रयास किया; परन्तु, उन्होंने अपना हठ नहीं छोड़ा। शिरडी में श्री साई महाराज से भेंट होने के पश्चात लौटते समय महन्तजी ने भक्तों से कहा, “यह सच्चा हीरा है। इसका ठीक-ठीक मूल्य आपको कदापि ज्ञात नहीं हो सकता। यद्यपि आज यह कुड़े-करकट के ढेर पर पड़ा है, फिर भी यह अपने तेज से आप सब लोगों को चकाचौंध कर देगा।” श्रीसाई महाराज में पारस की भाँति लोहे को सोना बनाने की अद्भुत शक्ति विद्यमान थी, यह जानने के लिये उसी योग्यता का रत्न-पारखी भी होना चाहिए था। सामान्य व्यक्ति के लिए हीरे तथा बिलौर में अन्तर समझना कठिन है। श्री साई महाराज के चमत्कार, लीलाएँ तथा अनुभव देखने मात्र से ही लोगों की सब शंकाएँ मिट गई और भक्तों के मस्तक स्वाभाविक ढंग से ही श्री साई महाराज के चरणों में नत मस्तक हो गये।

श्री साई बाबा के दर्शन के लिए आये हुए पुंडलीक नामक एक सद्गृहस्थ की कथा भी बहुत ध्यान देने योग्य है। यह गृहस्थ नांदेड (महाराष्ट्र) का रहने वाला था। एक दिन वह श्री वासुदेवानन्द सरस्वती के दर्शनों के लिए गया। वहाँ अन्य साधु-सन्तों के विषय में बातें होने लगी। श्री साई महाराज का भी उल्लेख हुआ। वहाँ एकत्रित भक्तों ने शीघ्र ही श्री साई के दर्शन के लिये जाने की अपनी-अपनी इच्छा प्रगट की। श्री वासुदेवानन्द महाराज स्वस्थ चित्त से भक्तों का संभाषण सुन रहे थे। अन्त में विदा होते समय पुंडलीक की ओर लक्ष्य करते हुए वे बोले-“तुम्हारी साई बाबा के दर्शन के लिए जाने की इच्छा है ना? तो फिर विलम्ब क्यों? अभी ही इन लोगों के

साथ जाओ । वे हमारे बन्धु हैं । उन्हें हमारा नमस्कार पहुँचा दो और यह नारियल भी उन्हें अर्पण करो ।”

पुंडलीक को शिरडी जाने वाले लोगों का साथ मिल गया । वह तत्काल ही श्री साई महाराज के दर्शन के लिए शिरडी को चल पड़ा । कोपरगाँव पहुँच कर स्वल्पाहार करने के लिए सब लोग स्टेशन के बाहर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये । प्रवास में खाने के लिए पुंडलीक और उसके साथी भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ अपने साथ लाये थे । सारे खाद्य पदार्थों को मिश्रित करके वे सब खाने के लिए बैठ गये । पुंडलीक का एक मित्र घी में भुना हुआ मुरमुरे का चिवड़ा भी लाया था; उसमें मिर्च अधिक मात्रा में पड़ी थी । मिर्च का प्रभाव कम करने के लिए पुंडलिक के मित्रों ने सहज भाव से एक नारियल तोड़ लिया और गोला तोड़कर चिवड़े में मिला दिया । अब तो सभी लोगों ने बड़े स्वाद से चिवड़ा खा लिया । पुंडलीक को इस बात का स्मरण ही नहीं रहा की यह नारियल श्री वासुदेवानन्दजी ने उसे श्री साईबाबाके दर्शनो के लिए दिया था । दोपहर को सब लोग शिरडी पहुँचे और श्री साईबाबाके दर्शनोके लिए गये । पुंडलीक को देखते ही श्री साई ने पहिला प्रश्न किया-“हमारे बन्धु का दिया हुआ नारियल कहाँ है ?” पुंडलिक एकदम असमंजस में पड़ गया और घबराकर श्री बाबा के चरणों पर गिर पड़ा । उसने मार्ग में घटी सारी घटना का पूर्ण विवरण श्री बाबा को सुना दिया । जब पुंडलीक दुसरा नारियल लाने के लिए उठ ही रहा था तो उसे बैठने के लिए कहकर श्री साई महाराज बोले-“अब उस नारियल की समता दूसरा कोई नारियल कदापि नहीं कर सकता । आप सब लोगों ने उसे खाया, कोई बात नहीं आप सब मेरे ही तो है ।”

सैंकड़ों मील दूर स्थित राजमहेन्द्री में हुई नारियल की यह घटना श्री साई महाराज को अपने अन्तर्ज्ञान से विदित हुई, यह तो सत्य है ही; पर श्री वासुदेवानन्द सरस्वती सदृश महन्त ने श्री बाबा का “हमारे बन्धु” कहकर जो उल्लेख किया, वह अधिक विचारणीय एवं महत्त्वपूर्ण है । अपने पूर्वाश्रम में किसी समय ये दोनों एक ही गुरु के पास अध्ययन करते होंगे और इसीलिए

दोनों का गुरुबन्धुत्व का नाता होना सम्भव है।

श्री साई बाबा के गुरु के सम्बन्ध में कोई अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। शिष्यों को दृष्टान्त रूप से उपदेश करते समय श्रीसाई महाराज ने अपने गुरु का बारम्बार बयान किया है। वे कहते थे की उन्होंने बारह वर्ष गुरु के घर रहकर तपश्चर्या की और उनका अनुग्रह एवं अशीर्वाद प्राप्त किया। श्री सद्गुरु उपासनी महाराज ने जो निजी-जीवन-वृत्तान्त लिखा है, उसमें श्री साई महाराज के गुरु एक मुसलमान फकीर थे, ऐसा उल्लेख है। श्री साई महाराज की कफनी की वेशभुषा, व्यवहार की पद्धति तथा ऊर्दू भाषा में बोलने का ढंग देखते हुए यही निष्कर्ष निकला है की जैसे उन्हें किसी मुसलमान फकीर का सांनिध्य प्राप्त हो चुका हो। परंतु स्वयं श्री साई महाराज के मुख से यह बात कभी प्रकट नहीं हुई की उनके गुरु यवन थे। प्रत्युत् श्री साई महाराज ने अपने गुरु का जो गुणगान किया है, उससे यही प्रमाणित होता है कि उनके गुरु उच्छकुलीन, बहुत ही ऊँचे पद पर पहुँचे हुए, ब्राम्हण जाति में उत्पन्न, अत्यन्त सुशील एवं ईश-चिंतन में सदैव निमग्न रहने वाले एक महान् पुरुष थे।

राधाबाई देशमुख नाम की एक वयोवृद्ध स्त्री श्री साई महाराज की सेवा करने के हेतु शिरडी में आई। श्री बाबा के प्रति उसके मन में अपार भक्ति-भाव था। श्री साई महाराज को अपना गुरु बनाकर उनसे एकाध मंत्र या उपदेश प्राप्त करने का उसने दृढ निश्चय किया था। आरम्भ में श्री बाबा ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया, किन्तु राधाबाई भी हठ पकड़े रही। अपने मन की इच्छा पूर्ण करने के लिए उसने आत्महत्या के अघोरी मार्ग का अवलम्ब लेने की ठानी। उसने अन्न-जल त्याग दिया और एक प्रकार से सत्याग्रह ही आरम्भ कर दिया। अपने हठ के कारण वह स्त्री सचमुच ही प्राणत्याग कर देगी, यह देखकर शामा जैसे प्रभावशाली व्यक्ति ने मध्यस्थता करने का प्रयत्न किया। श्री साईबाबा का कोमल अंतःकरण प्रेम से द्रवित हो गया।

उन्होंने उस वृद्धा को अपने पास बुलाया और अत्यन्त प्रेम से दो-चार समझदारी की बातें कहकर उपदेशामृत से उसे तृप्त कर दिया। राधाबाई को पूर्ण समाधान मिल गया और उसने अपना अनशन त्याग दिया। इस अवसर पर श्री बाबा ने अपने गुरु का जो वर्णन किया तथा अन्य कुछ बातें कही, वे सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

श्री साई महाराज ने कहा “माँ ! मेरे गुरु अत्यन्त दयालु अंतःकरण के महान् सत्पुरुष थे। मैंने बहुत वर्षों तक तन-मन-धन से अत्यन्त निष्ठापूर्वक उनकी सेवा की। पर अन्त तक उन्होंने मेरे कानमें एक भी मंत्र नहीं फूँका। मेरी सदैव यह आन्तरिक इच्छा रहती थी कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक उनकी सेवा करूँ और उनसे उपदेश ग्रहण करूँ। किन्तु उनका मार्ग ही निराला था। अपने पेट के बच्चे की भाँति ही वह मुझसे ममता करते थे। ऐसे गुरु का मिलना भी पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल समझना चाहिए। मेरे गुरुजी ध्यानावस्था में मेरी ओर एकाग्र चित्त से देखते हुए बैठ जाते थे और मैं भी शांत निर्मल मन से उनके सम्मुख बैठ जाया करता था। उनके नेत्रों से निकलने वाले दिव्य तेज से मेरा अंतःकरण भर जाता था। इस प्रकार समाधि कीसी स्थिती में मैं भूख-प्यास भूल जाता था। धीरे-धीरे अभ्यास मुझे यह ज्ञात हुआ कि गुरु-चरणों में पूर्ण श्रद्धा एवं निष्ठा कैसे रख सकते हैं ? धीरे धीरे अगाध सृष्टी-ज्ञान का जटिल रहस्य मुझे ज्ञात हुआ। सहनशीलता और धैर्य के महान् तत्त्व से मैं पूर्णतः परिचित हुआ। मेरे गुरु मुझसे अन्य किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते थे। मेरी देख-भाल करते हुए उन्होंने मुझे किसी प्रकार की असुविधा अनुभव नहीं होने दी। वे सदैव मेरे निकट रहते थे। “कमठ अंड की नाई.” व मेरी सार-संभाल करते थे और वैसे ही वात्सल्य से, वे नेत्रों से प्रेमपूर्ण वात्सल्य बरसाते हुए मुझे संरक्षण देते थे। वे साथ-साथ गुप्त-सुप्त पद्धति से मेरे आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि करते थे।

मेरे परमपूज्य गुरु महाराज ने मुझे कभी-भी कोई मंत्र नहीं दिया तो मैं तुझे क्या मंत्र दूँ ? मैं मंत्र-तंत्र आदि कुछ नहीं जानता । किसी से भी मंत्रोपदेश प्राप्त करने के झंझट में मत पड़ो । तुम अपने आचारविचार मेरी ओर एकाग्र करो । फिर तुम्हें सत्यमार्ग सरलता से ही दिखाई देगा और निश्चित रूप से तुम्हें परमार्थपद प्राप्त होगा । इस जगत्पटल पर हम निमित्त-मात्र कठपुतलियाँ हैं । हमारा सूत्रधार गुरु है । सब कुछ करनेवाला वही है । अपने गुरु में अविचल श्रद्धा, निष्ठा रखने से ही हमारा उद्धार होगा । यह त्रिकाल सत्य है , कभी भी असत्य सिद्ध नहीं होगा । ” इस उपदेश से राधाबाई का पूर्ण समाधान हुआ, इसमें आश्चर्य ही क्या है !

